शिक्षा का उदारीकरण
Liberalizing Education

माया डॉड
Maya Dodd
September 13, 2010

हाल ही में स्कूली स्तर पर भारतीय शिक्षा प्रणाली में किए गए व्यापक और भारी परिवर्तनों के बावजूद भारत की महाविद्यालयीन शिक्षा के ढाँचे पर अंतहीन विवादों के बादल गहराते जा रहे हैं. महाविद्यालयीन शिक्षा के "उदारीकरण" की माँग के कारण भारत के विकास के इस महत्वपूर्ण दौर में नए निवेश की आवश्यकता महसूस की जा रही है. परंतु देश की आबादी के एक बटा पाँच भाग की महाविद्यालयीन शिक्षा के वर्तमान स्तर में गिरावट आने के कारण एक बहुत बड़ी चुनौती हमारे सामने आ गई है. बहुत बड़ी संख्या में भारतीय युवाओं की शिक्षा के साधनों में अपर्याप्तता विनियमों या माँग-पूर्ति की कमी से कहीं अधिक बढ़कर है. विश्वविद्यालयों पर नियंत्रण रखने के विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अधिकार को समाप्त करने को लेकर ज्ञान आयोग की सिफ़ारिशों से शुरू हुआ विवाद ; भारतीय चिकित्सा परिषद द्वारा महाविद्यालयों को कानूनी रूप देने को लेकर अधिकारियों के दुरुपयोग के मामले; अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के अंतर्गत इंजीनियरी और प्रबंधन संबंधी निजी शिक्षा की अंधाधुंध बढ़ोतरी; और व्यावसायिक शिक्षा के अधिक समावेशी नियमों की समग्र रूप में अनदेखी: ये कुछ ऐसे मामले हैं जो यह संकेत देते हैं कि सामान्य राय तो यही है कि भारत में अंतःस्नातकीय शिक्षा के संपूर्ण बदलाव की भीषण आवश्यकता है.

असली समस्या इसके परिमाण या वाद-विवाद की चुनौतियों से कहीं आगे की है. इसका समाधान तभी हो सकता है जब बेहद ज़रूरी इन महाविद्यालयों को अधिकतम सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ. शिक्षा पर सारी बहस स्थान की तत्काल आवश्यकता जैसे विषयों पर ही केंद्रित रह जाती है. बहस माध्यमिक शिक्षा के बाद होने वाली शिक्षा की गुणवत्ता पर केंद्रित रहने के बजाय दूसरे अनेक मामलों पर होती रहती है. सन् 1947 में स्वाधीनता के बाद पिछले पैंसठ वर्षों में महाविद्यालयों की संख्या 500 से बढ़कर 20,000 तक पहुँच गई है. शिक्षा का वर्तमान ढाँचा महाविद्यालय जाने लायक उम्र के केवल 7 प्रतिशत भारतीय छात्रों को ही प्रवेश दे सकता है. आज के कम नामांकन के अनुपात से इस तथ्य का पता चल जाता है. वर्ष 2010 तक 15 - 24 तक की आयु समूह के छात्रों की आबादी कुल आबादी का 19 प्रतिशत होने का अनुमान है. इसलिए उनके अधिकाधिक प्रवेश की संभावनाएँ क्षीण होने का पूर्वानुमान लगाया जा रहा है. केंद्रीय जन संसाधन व विकास मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने हाल ही के अपने एक दीक्षांत भाषण

में यह स्वीकार किया है " इस समय हम चौदह मिलियन छात्रों को अपने महाविद्यालयों में प्रवेश दे पाते हैं और सन् 2020 तक हमारा लक्ष्य बयालीस मिलियन छात्रों को प्रवेश देने का है. फिर भी 160 मिलियन छात्र प्रवेश पाने से वंचित रह जाएँगे. उन्हें वैकल्पिक शिक्षा देने के लिए हमें विदेशी संस्थानों के माध्यम से निवेश की आवश्यकता होगी."

विदेशी निवेश का यह सुझाव इस वास्तविक सचाई पर प्रकाश डालता है कि भारत में विदेशी डिग्रियों के लिए निश्चित बाज़ार है. स्कूली स्तर पर भी उन अनेक छात्रों के लिए नई संभावनाएँ उभर रही हैं जो अंतर्राष्ट्रीय बैकालॉरेट (आईबी) शिक्षा का खर्च उठा सकते हैं. मुंबई जैसे शहर में आईबी स्कूल की शिक्षा का खर्च लगभग 2,500 अमरीकी डॉलर प्रति माह पड़ेगा और अनेक छात्र "अंतर्राष्ट्रीय" स्तर की शिक्षा के लिए आसानी से यह खर्च उठा सकते हैं. आईबी छात्र अक्सर अंतःस्नातकीय शिक्षा के लिए विदेश जाते हैं और "उदारीकरण" से यह अपेक्षा की जा सकती है कि इस विकल्प का उपयोग भारत में भी राज्य और विश्वविद्यालय-दोनों ही स्तरों पर नए बाज़ारों की तलाश में किया जाना चाहिए.

इसमें संदेह नहीं है कि भारत के युवाओं का मात्र परिमाण और वर्तमान बुनियादी ढाँचे की सीमाएँ ही वैश्विक विकल्पों की आवश्यकता को स्पष्ट कर देती है. पहले ही अनेक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय भारत में अपना स्थानीय कैम्पस खोलने के लिए तैयार बैठे हैं. गुणवत्ता / परिमाण पर बहस करने वाले वही लोग इस पर आरोप लगाते हैं जिनके पास पहले से ही ऐसे विकल्प मौजूद हैं. परंतु असली षड़यंत्र इस सचाई में नहीं है कि कौन इन विकल्पों का इस्तेमाल करता है बल्कि इस बात में है कि भारत अपनी स्कूली शिक्षा में गुणवत्ता लाने के इच्छुक लोगों को अधिक से अधिक विकल्प देने में सक्षम नहीं है.

भारतीय महाविद्यालयों का वास्तविक उदारीकरण ही सच्चे अर्थों में जनसांख्यिकीय और गुणवत्ता संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा. आरंभ में लोकतंत्र का तर्क यही था कि महाविद्यालयीन शिक्षा का प्रसार होते रहना चाहिए भले ही उससे गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव ही क्यों न पड़े. आज हम असमानता की समस्या से जूझ रहे हैं जहाँ लोकतांत्रिक सुधारों के कारण धनी उपभोक्ताओं की पहुँच व्यक्तिगत पाठ्यक्रम तक भी है, वहीं शेष लोग सिर्फ़ सीटों के लिए झगड़ रहे हैं. मध्यम वर्ग के छात्र व्यावसायिक प्रतियोगिता (जैसा कि हाल ही में *थ्री ईडियट्स* और *तारे ज़मीन पर* जैसी फ़िल्मों की सफलता से पता चलता है) के दबाव में पिस रहे हैं और महत्वपूर्ण विकल्पों से भी वंचित हो रहे हैं.

फ्रैन्चाइज़ी के द्वारा स्थानीय प्रासंगिकता की अनदेखी होती है और दो डिग्रियों को जोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है. इनमें छात्र पढ़ाई तो भारत में करते हैं, लेकिन उन्हें डिग्रियाँ विदेशी मिलती हैं और इन विदेशी डिग्रियों को पाने के लिए उन्हें भारी फ़ीस भी चुकानी पड़ती है. राज्यों द्वारा स्वाधिकृत निजी महाविद्यालयों में एक अरसे से बहस छिड़ी हुई है कि इन पर नियंत्रण किसका होना चाहिए स्थानीय या संघीय. इसका एक उदाहरण आरक्षण और जाति-आधारित कोटे का है. समाज के उपेक्षित वर्ग को प्रवेश की सुविधा दिलाने के विनियम उन निजी महाविद्यालयों पर लागू नहीं होते, जिन्हें सरकार से किसी प्रकार की वित्तीय सहायता नहीं मिलती. राज्य से वित्तीय सहायता मिलने के कारण निजी महाविद्यालय विदेशी संस्थाओं के साथ संपर्क वाले शोध संसाधनों को बेहतर बनाने और अनुभव की व्यापकता को बढ़ाने की अपनी क्षमता में वृद्धि कर सकते हैं. भारी वित्तीय सहायता पाने वाले राज्य के महाविद्यालय भी स्तरीय ढाँचागत सुविधाएँ प्रदान करने में सक्षम नहीं होते और निजी महाविद्यालय अपनी स्वायत्तता की बलि चढ़ाकर राज्य की वित्तीय सहायता से जुड़े बंधनों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते. फलस्वरूप सारी बहस कोटे, अनुदान और विनियमों तक ही सिमट कर रह जाती है और भारतीय महाविद्यालयों के छात्रों की शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने पर किसी का ध्यान नहीं जाता.

वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा के लिए भारत की युवा जनसांख्यिकी को तैयार करने के लिए शिक्षा प्रणाली के उदारीकरण की नितांत आवश्यकता है ताकि विकल्पों को अधिकाधिक अद्यतन बनाया जा सके,शोध संसाधनों तक पहुँच बढ़ाई जा सके और प्रतिभाशाली संकाय सदस्यों को जुटाया जा सके. विकास दर और नए बाज़ार के हल्ले-गुल्ले के बावजूद महाविद्यालयीन शिक्षा का उन्नयन मात्र नामांकन के अनुपात और उपभोक्ताओं के विकल्पों से ही प्रकट नहीं होता, बल्कि इसके लिए स्नातकीय कक्षाओं में सुधार लाने की आवश्यकता भी होती है. सच्चा उदारीकरण शिक्षा को बेहतर नियमन और परिमाण में अधिक निवेश के क्षेत्र में देखने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके लिए और अधिक व्यापक और सूक्ष्म चुनौतियों का सामना करने की आवश्यकता होगीः महाविद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता लानी होगी,आरंभिक अवस्था में ही व्यावसायिक विशेषज्ञता लानी होगी और बड़े पैमाने पर प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से दक्षता लानी होगी. इससे ही पुराने पाठ्यक्रमों और आज की आवश्यकताओं के बीच के अंतराल को भरा जा सकेगा. परंतु ये उपाय छात्र-शिक्षक अनुपात जैसे सवालों के जवाब ढूँढने से शुरू होकर वास्तविक स्नातकीय शिक्षा की जिज्ञासा की पूर्ति के लिए विकल्पों और क्षमताओं को खोजने के लिए समय निकालने तक होंगे. मात्र भारत के युवाओं का भारी परिमाण ही हमें ईमानदारी से यह सोचने के लिए

बाध्य करता है कि महाविद्यालयीन शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए उदारीकरण की कितनी आवश्यकता है और विशेषकर तब जब *गुणवत्ता* की बेहद कमी हो.

डॉ. माया डॉड पुणे (भारत) में उदार और प्रबंधन शिक्षा प्रतिष्ठान (फ़्लेम) में दक्षिण एशिया केंद्र की निदेशक हैं जहाँ वे साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन विषय का अध्यापन करती हैं. उन्होंने स्टैनफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि प्राप्त की है.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>